Introduction

:: प्राक्कथन ::

======

" कोटिक जग के नर पशु , वाके जितने रोम ।
उतने ही आलम यहां , तू रोमन का रोम ।। "

भले ही इस सृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व "रोम" के समान हो , परंतु उसे ईश्वर या प्रकृति से जो वरदान प्राप्त हुआ है , उसके कारण वह पृथ्वी पर की तमाम जीव-सृष्टि में श्रेष्ठतम प्रमाणित हुआ है । ईश्वर या प्रकृति का वह वरदान है -- भाषा । मानव-विकास के इतिहास पर जब हम दृष्टिपात करते हैं , तब हमें इस तथ्य का परिज्ञान हुए बिना नहीं रहता कि मनुष्य की अभी तक की प्रगति के मूल में उसकी भाषा ही है । इस भाषा के ही कारण साहित्य , कला , संस्कृति तथा विज्ञान आदि का विकास हुआ है । दूसरे प्राणियों के पास केवल बोली है और वह भी अल्पातिअल्प और सीमित मात्रा में । दूसरे वह केवल ध्वनि-रूप में है , लिखित रूप में नहीं । जिस दिन मनुष्य ने लिपि का आविष्कार किया होगा , वह दिन मानव-जीवन के इतिहास का अत्यंत ही शकवर्ती और सुनहरा रहा होगा । प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं नाटककार गुरचरनदास ने कहा है -- "वी आर द ओन्ली स्पेशीज इन द वर्ल्ड विथ ए डेवलोप्ड एण्ड रीफ्लेक्टीव इण्टेलीजेन्स , वन आफ द ग्रेट रिवार्ईस आफ द इण्टेलीजेन्स इज़ लैंग्वेज ; एण्ड आफ द ग्रेट गिफ्टस फ्रोम अवर एन्सेस्टरर्स इज द डीसकवरी आफ राईटिंग , टु बी ह्युमन इज टु रीड , एण्ड टु रीड ए ग्रेट डील. "

साहित्य इसी भाषा का शृंगार है । उसका गौरव और गरिमा है । साहित्य ही संस्कृति की जननी है । जिसने साहित्य और शास्त्र उभय को पढ़ा है , वह सचमुच भाग्यशाली है । जिसने केवल शास्त्र पढ़ा है , साहित्य नहीं , उसका भाग्य अतिमंद कहा जायेगा । और जिसने इन दोनों में से किसी को नहीं पढ़ा , वह तो नितांत भाग्य-हीन ही कहा जायेगा ।

इस अर्थ में मैं अपनी परिगणना भाग्यशाली व्यक्तियों में

कर रही हूं , कि न केवल "जन्मना" अपितु "कर्मणा" भी , मेरे पूर्वज सचमुच के ब्राह्मण रहे हैं , क्योंकि उनका वास्ता शब्द , क्रियाशील शब्द से , सदैव रहा है । गुजराती के रससिद्ध कवि पंड्या नटवरलाल कुबेरदास का तखल्लुस "उशनस" है । "उशनस" शब्द का अर्थ "वैद्य" होता है और कवि भी एक प्रकार से समाज का वैद्य ही होता है । हमारी प्राचीन परंपरा में वैद्य को "कविराज" कहा भी जाता था । मेरे दादा जयंतीलाल कवि , लेखक तथा वैद्य थे और "नगरसेठ" की उपाधि से विभूषित थे । मेरे पिता कपिलराय पाठक गुजराती के एक प्रसिद्ध पत्रकार हैं और बड़ौदा से "धबकार" नामक सामाजिक , सांस्कृतिक , और राजनीतिक साप्ताहिक निकालते हैं । मेरे अग्रज श्री मयूरभाई गुजरात के सुप्रसिद्ध दैनिक "गुजरात समाचार " की सूरत आवृत्ति के प्रधान सम्पादक हैं , अतः साहित्यानुराग मेरे संस्कारों में है । मेरी माता श्रीमती अनसूयादेवी गुजराती, अंग्रेजी तथा संस्कृत विषयों की, माध्यमिक पाठशाला में अध्यापिका रही हैं । अतः पढ़ना-पढ़ाना यह ब्राह्मणोचित कर्म हमारे यहां एक साहजिक दिनचर्या के रूप में रहा है । घर-परिवार के इस साहित्यिक परिवेश के परिणामस्वरूप प्राथमिक शिक्षा एवं माध्यमिक शिक्षा के दौरान हिन्दी-गुजराती साहित्य के प्रति मेरी विशेष अभिरुचि रही है । फलतः महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी के कला-संकाय में जब उच्च-शिक्षा हेतु प्रविष्ट हुई तो स्वाभाविक रूप से मेरे चयन-क्षेत्र में साहित्य के विषय ही पड़ने थे । मैंने बी.ए. मुख्य विषय हिन्दी तथा गौण विषय गुजराती के साथ प्रथम कक्षा में प्रथम आकर उत्तीर्ण किया था और एम. के. अमीन आर्ट्स एण्ड सायन्स कालेज आफ पादरा का स्वर्णपदक मुझे एनायत किया गया था । बी.ए. में विशेष साहित्यकार के रूप में मैंने छायावाद के प्रेम और सौन्दर्य के कवि जयशंकर प्रसाद को लिया था । उसके दो वर्ष बाद सन् 1993 में मैंने एम.ए. भी समग्र हिन्दी {एन्टायर हिन्दी} के साथ प्रथम कक्षा से उत्तीर्ण किया । एम.ए. में मेरा विशेष-पत्र "उपन्यास" था , जिसे डा. पारुकांत देसाई

पढ़ाते थे । उनकी अध्यापन कला , ज्ञान-निष्ठा , कार्य-निष्ठा एवं छात्र-वत्सलता से विभाग के सभी छात्र प्रसन्न थे । अतः मैंने अपने मन से निर्धारित कर लिया था कि यदि अवसर मिला तो मैं उनके ही मार्गदर्शन में पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध-कार्य करूंगी । तब तक मैं शिवानी के कुछ उपन्यास पढ़ चुकी थी और उनकी काव्यात्मक भाषा-शैली से "मुग्धता" की सीमा तक प्रभावित थी । जो लोग कथा-साहित्य में काव्य का-सा आनंद लूटना चाहते हैं , वे लोग शिवानी के कृतित्व से अवश्य लाभान्वित हो सकते हैं । एम.ए. के उपरांत मैंने जब देसाई साहब के सामने "शिवानी" पर कार्य करने का विचार रखा तो उन्होंने ककक्ष×ग्रि× बताया कि शिवानी के कथा-साहित्य पर वैसे तो काफी काम हो चुका है , परंतु यदि तुम चाहो तो शिवानीजी की भाषा को लेकर कार्य कर सकती हो । और इस प्रकार विषय निश्चित हुआ— " शिवानीजी के उपन्यासों की भाषा : एक अनुशीलन " ।

विषय-निर्धारण के पश्चात् डाक्टर देसाई ने मुझे प्रो. डा. भ.ह. राजूरकर , डा. नगेन्द्र , डा. रवीन्द्र श्रीवास्तव , डा. विद्या-निवास मिश्र , डा. तिलकसिंह , डा. उदयनारायण तिवारी प्रभृति विद्वानों के शोध-अनुसंधान विषयक ग्रंथों को तथा औपन्यासिक अनु-संधान क्षेत्र में प्रकाशित-अप्रकाशित कतिपय शोध-प्रबंधों को देख जाने के लिए कहा । इस बीच डा. एस.एन. गणेशन , डा. भारतभूषण अग्रवाल तथा डा. सत्यपाल चुघ के प्रकाशित शोध-प्रबंधों को सामने रखकर प्रत्यक्षतः शोध-प्रविधि की नाना ××× बारीकियों से डाक्टर साहब ने मुझे परिचित करवाया । यह सब कार्य मैं ग्रीष्म-कालीन छुट्टियों में कर चुकी थी । अतः जुलाई 1993 को उक्त विषय को लेकर पी-एच.डी. उपाधि हेतु मेरा नाम पंजीकृत हो गया । परंतु उसी वर्ष युनिवर्सिटी की पी.जी. काउन्सिल ने नियम बनाया कि म.स. युनिवर्सिटी द्वारा मान्य कोई भी पी-एच.डी. मार्गदर्शक आठ से अधिक शोधकर्ताओं को अपने अंतर्गत नहीं रख सकता ।

अतः विभाग के एक अन्य प्राध्यापक डा. भगवानदास कहार साहब के अन्तर्गत मेरा नाम रखा गया , बशर्ते कि बाद में जगह होने पर डा. देसाई साहब के अन्तर्गत उसे स्थानांतरित किया जायेगा ।

इस प्रकार मेरी शोध-यात्रा का श्रीगणेश हुआ । इस उपक्रम में मैंने शिवानीजी के "कृष्णकली" , "चौदह फेरे " , "मायापुरी" , "भैरवी" , "श्मशान चम्पा" , "कैंजा" , "गैण्डा" , ××××××× "सुरंगमा" , "विवर्त" , "तीसरा बेटा " , "विषकन्या" , "उपप्रेती", "दो सखियां" , " कालिन्दी" आदि लगभग बीस उपन्यासों को शब्दशः पढ़ा है । कुछेक उपन्यासों का वाचन तो देसाई साहब के साथ हुआ है । उन्होंने मुझे एक-एक वाक्य पढ़ते हुए यह बताया कि मुझे उनमें से क्या-क्या नोट करना चाहिए । जैसे-जैसे यह कार्य मैं करती गई , इस तथ्य से भलीभांति परिचित होती गई कि शोध-कार्य कोई सरल बात नहीं है , बल्कि यह तो टेढ़ी खीर है , क्योंकि आनंद-प्राप्ति हेतु उपन्यास को पढ़ना एक बात है और शोध-कार्य के अर्जुनशुदा लक्ष्य को सामने रखकर उसे पढ़ना दूसरी बात है । पर गुजराती के कवि वाडीलाल डगली ने कहा है कि " — " तुफानो नी एने खबर होय क्यांथी ? तरे नाव जेनुं किनारे किनारे । "

अतः शोधकार्य के इस महार्णव में जब मैंने अपनी आकांक्षा की नैया को छोड़ दिया तो अब उसमें भी एक अनोखा आनंद आने लगा है । शिवानीजी के समग्र औपन्यासिक कृतित्व को दो-तीन बार शब्दशः पढ़ने के उपरांत शोध-प्रबंध के सुनियोजित स्वरूप हेतु तथा अपने आलोच्य विषय के समीचीन प्रतिपादन हेतु इसे निम्न-लिखित सात अध्यायों में विभक्त किया गया है :—

§1§ विषय-प्रवेश

§2§ विषय-वस्तु एवं चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से शिवानीजी के उपन्यासों की भाषा

§3§ परिवेश की दृष्टि से शिवानी के उपन्यासों की भाषा

§4§ शब्द-विचार /1/

§5§ शब्द-विचार /2/

§6§ शिवानीजी की भाषाशैली के कतिपय अभिलक्षण

§7§ उपसंहार

प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश " का है । अतः प्रारंभ में थोड़ी उपन्यास-विषयक चर्चा की गई है । उपन्यास एक गद्य-विधा है और गद्य के विकास के पश्चात् ही उसका उद्भव हुआ है , अतः दोनों के अभिन्न संबंधों को रेखांकित किया गया है । उपन्यास का व्यावर्तक लक्षण है — उसकी यथार्थधर्मिता । उपन्यास की प्रायः सभी परिभाषाओं में यथार्थ के आकलन की बात को सर्वोपरि रखा गया है , अतः इस अध्याय में यह भी परीक्षित किया गया है कि इस यथार्थ के निर्माण में भाषा किस हद तक सहायक होती है और उसमें उसकी भूमिका क्या होती है । यहां एक बात ध्यातव्य है कि बाद में शिवानी के उपन्यासों की भाषा पर तो विस्तार से चर्चा होने ही वाली है , अतः यहां शिवानीजी के अतिरिक्त अपनी स्थापनाओं के लिए अन्य उपन्यासकारों के गद्य-उदाहरण भी दिये गये हैं । यहां यह भी बताने का उपक्रम रखा है कि विषय-वस्तु तथा परिवेशगत भिन्नता के कारण एक ही लेखक की भाषाशैली में भी अंतर पाया जाता है । औपन्यासिक शिल्प भी भाषा को प्रभावित करता है । इस अध्याय के अंतर्गत चरित्र और भाषा , परिवेश और भाषा , शिवानीजी के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय , अन्य शैलीकारों से उनकी तुलना जैसे कतिपय मुद्दों को चर्चा का विषय बनाया गया है । आगे चूंकि शिवानीजी के उपन्यासों की भाषा पर विचार करना है , अतः उसे भलीभांति व्याख्यायित करने हेतु उनके उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय भी यहां दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय विषय-वस्तु एवं चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से शिवानी के उपन्यासों की भाषा के परिप्रेक्ष्य में है , अतः यहां

विषय-वस्तु एवं भाषा का संबंध , समसामयिक विषय-वस्तु और भाषा , ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संदर्भयुक्त विषय-वस्तु और भाषा , नगरीय और ग्रामीण विषय-वस्तु और भाषा , चरित्र-सृष्टि में भाषा का योग , भाषा में प्रयुक्त विचार और चरित्र , चरित्रों के विभिन्न स्तर — स्त्री-पुरुष , बालक , युवा , वृद्ध , शिक्षित , अशिक्षित , ग्रामीण-नगरीय , विविध व्यवसायों से संलग्न व्यक्ति — को भाषा के परिप्रेक्ष्य में देखने का यत्न , भाषा से चरित्र के अन्तर्मन पर प्रकाश जैसे मुद्दों की सोदाहरण पड़ताल करने का यत्न यहां किया गया है ।

तृतीय अध्याय में परिवेश की दृष्टि से शिवानीजी के उपन्यासों की भाषा पर विचार किया गया है । यहां प्रथमतः शिवानीजी के उपन्यासों से अनेक उदाहरणों के द्वारा यह निर्दिष्ट करने का यत्न हुआ है कि परिवेश के निर्माण में भाषा की क्या भूमिका है । परिवेश भौगोलिक भी होता है और ऐतिहासिक भी , क्योंकि देश और काल उसके दो छोर हैं । इस अध्याय के अन्तर्गत ग्रामीण परिवेश , पहाड़ी परिवेश - विशेषतः कुमाऊं प्रदेश का परिवेश , नगरीय परिवेश , मुम्बई , दिल्ली , कलकत्ता ; हिन्दू-परिवेश , मुस्लिम -परिवेश , पारसी परिवेश , बांग्ला-परिवेश , ईसाई-परिवेश इत्यादि के परिप्रेक्ष्य में भाषा के सन्दर्भ में विचार किया गया है ।

चतुर्थ और पंचम अध्याय में शिवानीजी के उपन्यासों में आनेवाले शब्दों पर विचार किया गया है । संस्कृत , अरबी-फारसी, अंग्रेजी , कुमाऊंनी , बांग्ला , मराठी , गुजराती , पंजाबी तथा अन्य भाषा के शब्दों का अध्ययन करने की चेष्टा हुई है । तत्सम , तद्भव तथा देशज शब्दों को भी गौरतलब किया गया है । नवीन शब्द-प्रयोग , वर्णमैत्री वाले शब्द , ध्वन्यात्मक-शब्द , ध्वनि-पुनरावर्तन से युक्त शब्द ; व्यक्ति , स्थल , पेड़ , पौधे , पुष्प , चीज-वस्तुओं के नाम , अलंकारों के नाम , गाड़ियों के नाम , आधुनिक सभ्यता से जुड़े हुए शब्द , पुरातत्व से जुड़े हुए शब्द ; नये

उपमान , नये रूपक , नये विशेषण , नये क्रिया-रूप , नवीन मुहावरे , नवीन कहावतें , मुहावरों और कहावतों का नये ढंग से प्रयोग, नये प्रतीक प्रभृति की यहां सोदाहरण चर्चा की गई है ।

षष्ठ अध्याय में शिवानीजी की भाषाशैली की कतिपय विशेषताओं तथा उनकी सीमाओं और मर्यादाओं का विश्लेषण हुआ है ।इसमें शिवानी-जी के गद्य में उद्धरण , सूक्तियों , कहावतों एवं मुहावरों के सार्थक प्रयोग को निष्पादित करते हुएउनकी भाषा में प्रयुक्त विभिन्न शैलियों — समासशैली , व्यासशैली , प्रौढ़ या विदग्धशैली , सरस-मधुर शैली , व्यंग्यात्मक शैली , आंचलिक शैली , आलंकारिक शैली , संस्कृत-परि-निष्ठित शैली , अरबी-फारसी वाली शैली -- की सोदाहरण चर्चा की गयी है । इसी अध्याय में शिवानीजी के गद्य में पायी जानेवाली कतिपय विशेषताओं — सार्थक कथोपकथन , संकेतात्मकता , संक्षिप्तता , बहुश्रुतता, प्रतीकात्मकता , हास्य-व्यंग्य , नवीन भाषाभिव्यंजना — को भी उकेरा गया है । अध्याय के अंत में शिवानीजी के गद्य की कुछ मर्यादाओं व सीमाओं को चिह्नित करते हुए उनके गद्य में पाये जाने वाले कुछेक भाषागत दोषों का विवरण सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।

यहां यह भी ध्यातव्य रहे कि प्रत्येक अध्याय के अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं । अंतिम अध्याय "उपसंहार" का है । उसमें प्रबंध का समग्रावलोकन प्रस्तुत करते हुए , उसकी उपलब्धियों और संभा-वनाओं को उकेरा गया है । प्रबंध के अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत आधार-भूत ग्रंथ , सहायक सन्दर्भ ग्रंथ , अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ तथा अंग्रेजी-हिन्दी के विभिन्न कोशों तथा पत्र-पत्रिकाओं का निर्देश दिया गया है जिनसे अनुसंधित्सु लाभान्वित हुई है ।

अन्त में यही निवेदित करना चाहूंगी कि शोधकर्त्री अपनी शक्ति और सामर्थ्य की सीमाओं से भलीभांति अभिज्ञ हैं है । अतः त्रुटियों के लिए विद्वत्जनों के सम्मुख प्रथमतः क्षमा-याचना कर लेती हूं । इस कार्य को संपन्न करने के लिए जिन विद्वानों और महानुभावों

के ग्रंथों से या लेखों से मैंने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से सहायता अंगीकृत की है , उन सबके श्रमिश्रण के प्रति मैं पूर्णतः श्रद्धावनत हूं और हृदयपूर्वक अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं । हिन्दी विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक डा. प्रतापनारायण झा , डा. रमणलाल पाठक , डा. प्रेमलता बाफना , डा. अनुराधा दलाल , डा. भगवानदास कहार , डा. वामन अहिरे , डा. अक्षयकुमार गोस्वामी प्रभृति गुरुजनों के आशीर्वाद के अभाव में प्रस्तुत कार्य संभव नहीं था । अतः उन सबके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं ।

मेरे माता-पिता के आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन मुझे सदैव कर्मपथ पर अग्रसरित करते रहे तथा समस्याओं के निबिड़ अंधकार में मेरे जीवन-पथ को आलोकित करते रहे । माता-पिता के इन असीम उपकारों से कौन उऋण हो सकता है ? विषय-पंजीकरण के कुछ ही महीनों में मेरा पाणि-ग्रहण संस्कार हो गया था । ऐसी स्थिति में श्वसुर-पक्ष के सहयोग एवं प्रोत्साहन के बिना अनेक बार अध्ययन-यात्रा बीच में ही स्थगित हो जाती है ; परन्तु मेरे पति श्री रूपेशकुमार तथा पिता-तुल्य श्वसुर श्रीयुत दिनेशचन्द्रजी और माता-तुल्य सास अ.सौ. अरविन्दाबहन ने इस समूची शोध-प्रक्रिया में न केवल सहयोग प्रदान किया है , अपितु पग-पग पर मेरा उत्साहवर्द्धन भी किया है । अतः उनके प्रति मैं अपनी आत्मिक एवं सात्त्विक श्रद्धा निवेदित करती हूं ।

इसी अध्ययन-यात्रा के बीच हमारी-संसार वाटिका में एक नये अतिथि का आगमन हुआ । वह है मेरा बेटा प्रीत । नये शिशु को मां की सर्वाधिक आवश्यकता रहती है । वह तो एक छोटे-से पुष्प के मानिंद होता है । मां को चाहिए कि वह एक माली की तरह उसकी सार-संभाल रखे । उसे प्यार व उष्मा दें । परंतु इस शोध-कार्य के दरमियान कई बार उसे दो-दो घण्टों के लिए मेरी माताजी के पास छोड़ना पड़ा है । तब मेरे भीतर की मां

बहुत तड़पी है । अतः उस नन्हे-से फूल को प्रेमोष्मा से सौरभित करने में यदि मैं यत्किंचित भी चूकी हूं तो उसके लिए उस परम-पिता के प्रति क्षमा-प्रार्थित हूं । परंतु साथ ही आस्थावान भी हूं कि मेरा बेटा इन कारणों से ही शायद अधिक प्रतिभाशाली हो , अधिक प्रज्ञा-वान हो , क्योंकि इस संदर्भ में भी डाक्टर साहब की एक अनुभव-सिद्ध मान्यता है कि जो माताएं गर्भावस्था के दौरान अध्ययन-रत होती हैं , उनके बच्चे पढ़ने-लिखने में तेज़ निकलते हैं ।

प्रारंभ से ही , पंजीकरण की समस्या से ही , अनेकानेक विपदाओं का सामना शोधकर्त्री को करना पड़ा है । इन सबमें मेरी तितिक्षा का बांध कदाचित् टूट भी जाता , मेरे निश्चय के पैर कहीं उखड़ भी जाते , परंतु यह सब नहीं हुआ और प्रस्तुत कार्य सुचारु ढंग से संपन्न हुआ , उसका श्रेय मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई साहब को जाता है । अपनी असुविधाओं को न देखते हुए उन्होंने मेरी सुविधाओं को वरीयता दी । इससे प्रमाणित होता है कि डाक्टर साहब अपने शोध-छात्रों के प्रति कितने उदार हैं । उनकी शोध-निष्ठा , छात्र-वत्सलता तथा ज्ञान-निष्ठा से सभी भलीभांति परिचित हैं । उनके इस गुरूऋण से मुक्त हो पाना मेरे लिए संभव नहीं है । मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि इस ज्ञानपथ पर किंचित् मात्र भी अग्रसरित होकर मैं अपने गुरु की प्रतिष्ठा में अंश मात्र का भी योगदान दूं । गुरूऋण चुकाने की हमारे यहां यह भी एक परंपरा रही है ।

यहां पर मैं अपने गुरु-भाई श्री प्रवीण पंड्याजी उर्फ बावाजी को विस्मृत नहीं कर सकती , क्योंकि मेरे इस कार्य में उनका भी योग-दान है । इस कार्य के उपरांत मेरा यु.के. जाना लगभग निश्चित-सा है । अतः उन्होंने अपनी भी तारीखें मुझे देकर मेरा उपकार किया है । उनके इस उपकार को मैं कभी नहीं भूल सकती ।

:: || ::

अंत में यही निवेदित है कि ज्ञान-विज्ञान के मार्ग तो सीमातीत और अंतहीन होते हैं । कहा भी गया है -- वादे वादे जायते तत्वबोधाः । मैंने अपने इस शोधकार्य के दौरान अनेक पूर्ववर्ती अनुसंधित्सुओं के तथा गुरु-भाई-बहनों के शोधकार्यों से लाभ उठाया है, ठीक उसी तरह मेरा यह कार्य मेरे परवर्ती अनुसंधानकर्ताओं को किंचित् भी लाभान्वित कर सका तो मैं अपने इस श्रम को सार्थक समझूंगी ।

मां सरस्वती के [illegible] साहित्यवारि में, मैं भी कविवर बिहारी की भांति डूबकर जीवन में आप्तकाम होने की कामना करती हूं ----

" तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग ।। "

विनीत,

दिनांक :
20-1- 1997

Mona Pathak

{ श्रीमती मोना पाठक }